शिव डेवेलपर्स द्वारा इनके भागीदार सुनिल भाई
सोमाभाई अजमेरी
वि
अक्षराय डेवलपर्स एवं वगैरह
(सिविल अपील क्रमांक 2022/785)
31 जनवरी, 2022
[दिनेश महेश्वरी और विक्रम नाथ, जे जे०]

साझेदारी अधिनियम, 1932- धारा 69(2) के तहत रोक- कब आकर्षित नहीं होगा- अभिनिर्धारित : धारा 69(2) की रोक को आकर्षित करने के लिए, विचाराधीन संविदा तीसरे पक्ष के प्रतिवादी के साथ फर्म द्वारा दर्ज किया गया संविदा होना चाहिए और जो वादी फर्म द्वारा अपने व्यापारिक लेनदेन के दौरान किया गया हो - धारा 69(2) एक अपंजीकृत फर्म द्वारा दायर किए गए मुकदमे पर कोई रोक नहीं है, यदि वह किसी के प्रवर्तन के लिए है मामले में वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून का अधिकार के तहत, वर्तमान मामले में, विचाराधीन लेन-देन अपीलकर्ता-वादी द्वारा किया गया लेन-देन नहीं था, जो कि एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म है, जो अपने व्यवसाय (अर्थात, भवन निर्माण) के दौरान हुई थी, और यह बिक्री का एक स्वतंत्र लेन-देन था। मुकदमे की संपत्ति में फर्म के हिस्से का, प्रतिवादियों को- इस प्रकार, धारा 69(2) का प्रतिबंध उक्त बिक्री लेनदेन के संबंध में आकर्षित नहीं होता है- इसके अलावा, विषय मुकदमे को एक के लिए नहीं कहा जा सकता है, एक संविदा से उत्पन्न होने वाले अधिकार का प्रवर्तन, बल्कि विषय सूट स्पष्ट रूप से वह है जहां वादी धोखाधड़ी और गलत बयानी के आरोपों के साथ-साथ विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 के प्रावधानों के संदर्भ में निषेधाज्ञा और घोषणा के वैधानिक अधिकारों के साथ सामान्य कानून उपचार चाहता है, और साथ ही संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (पर बिक्री पर विचार करने का आरोप लगाते हुए) - इसलिए, धारा 69(2) की रोक वर्तमान मामले पर लागू नहीं होती है - ट्रायल कोर्ट ने मामले के तथ्यों की सही सराहना की और उत्तरवादियों द्वारा दायर निराधार आवेदन को खारिज कर दिया - उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश ने ट्रायल कोर्ट को विधि के अनुसार विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 - संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 के तहत मुकदमे की सुनवाई आगे बढ़ाने के लिए रद्द कर दिया।

उमेश गोयल बनाम हिमाचल प्रदेश को-ऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड:

(2016) 11 एससीसी 313: [2016] 6 एससीआर 703; फारूक बनाम संध्या एंथ्रेपर

कुरिशिंगल और अन्य **(2018) 12 एससीसी 580 को अनुपयुक्त ठहराया गया।**

हल्दीराम भुजियावाला और अन्य . आनंद कुमार दीपक कुमार और अन्य :(**2000) 3 एससीसी 250: [2000] 1 एससीआर 1247**; राप्टाकोस ब्रेट और एमपी; कंपनी लिमिटेड बनाम गणेश प्रॉपर्टी **(1998) 7 एससीसी 184: [1998] 1 पूरक। एससीआर 485; पुरूषोत्तम और अन्य वी. शिवराज फाइन आर्ट लिथो वर्क्स और** अन्य। **(2007) 15 एससीसी 58: [2006] 8 पूरक। एससीआर 524 पर भरोसा किया।**

केस कानून संदर्भ

[2016] 6 एससीआर 703	**अनुपयुक्त ठहराया गया**	**पैरा 12.1**
[2018] 12 एससीसी 580	**अनुपयुक्त ठहराया गया**	**पैरा 12.1**
[2000] 1 एससीआर 1247	**पर भरोसा**	**पैरा 11**
[1998] 1 पूरक। एससीआर 485	**पर भरोसा**	**पैरा 15**
[2006] 8 पूरक। एससीआर 524	**पर भरोसा**	**पैरा 9.3**

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 785/2022

2017 के नागरिक पुनरीक्षण आवेदन संख्या 241 में अहमदाबाद में गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 15.02.2018 से।

अपिलकर्ता कि ओर से अधिवक्ता सुश्री श्रेया जैन, गौरव तंवर, सचीन मित्तल।

उत्तरवादी कि ओर से अधिवक्ता क्रुथिन जोशी, राजेश महाले, पुरविश जितेन्द्र मलकान, जितेन्द्र मलकान, सुश्री धारिता पी. मलकान, सुश्री दिपा गोरसिया, अलोक कुमार, सुश्री नंदिनी छाबरा, सुश्री भावना सरकार।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

दिनेश महेश्वरी, जे०

प्रासंगिक तथ्यात्मक मैट्रिक्स और पृष्ठभूमि.....2*

याचिका को खारिज करने की मांग करने वाला आवेदन: ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट के अलग-अलग विचार। 6*

जी प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ.....12*

1932 के अधिनियम की धारा 69 और प्रासंगिक सिद्धांत.....15*

विषय वाद में प्रासंगिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग..... .21*

निष्कर्ष.....23

---

*नोट: पेजिनेशन मूल निर्णय के अनुसार है।

अनुमति प्रदान कि गई।

2. घोषणा और निषेधाज्ञा के मुकदमे के वादी द्वारा यह अपील, गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा 2017 के सिविल पुनरीक्षण आवेदन संख्या 241 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 15.02.2018 के खिलाफ निर्देशित है, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने उत्तरवादियों (यहां उत्तरवादी क्र० 1 से 3 तक) द्वारा दायर पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति दे दी है और विशेष सिविल सूट संख्या 333/2015 में 9 अतिरिक्त वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, वडोदरा की अदालत द्वारा पारित दिनांक 07.04.2017 के आदेश को उलट दिया है।

2.1. दिनांक 07.04.2017 के उक्त आदेश द्वारा, ट्रायल कोर्ट ने आदेश VII नियम 11 (द), आदेश XXX नियम 1 और 2 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908[3] की धारा 151 के साथ पढ़े गए अनुभाग के तहत प्रतिवादियों द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया था। भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932[4] की धारा 69 में इस आधार पर वादपत्र को अस्वीकार करना कि एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म द्वारा और उसकी ओर से दायर किया गया मुकदमा कानून द्वारा वर्जित था। ट्रायल कोर्ट ने अनिवार्य रूप से माना कि, विचाराधीन बिक्री विलेख की वैधता से संबंधित विषय-वस्तु पर, धारा 69(2) की रोक इस मुकदमे के खिलाफ का संचालन नहीं कर रही थी। यद्दपि, उच्च न्यायालय ने इस मामले पर एक विपरीत दृष्टिकोण अपनाया है और माना है कि वादी, एक अपंजीकृत फर्म होने के नाते, 1932 के अधिनियम की धारा 69 (2) के संदर्भ में संविदा से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने से रोक दिया जाएगा।

3. हम मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स और पृष्ठभूमि पहलुओं पर ध्यान दे सकते हैं, जो इस मामले में निर्धारण के लिए पूछे जाने वाले प्रश्न के लिए अब तक प्रासंगिक हैं, यानी कि क्या एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म द्वारा दायर विषय मुकदमा, अनुभाग द्वारा बनाई गए 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) रोक के दायरे में आता है?

प्रासंगिक तथ्यात्मक मैट्रिक्स और पृष्ठभूमि

4. विषय-वस्तु की उचित समझ के लिए, दलीलों और प्रस्तुतियों पर विस्तार करने से पहले संबंधित पक्षों की स्थिति पर ध्यान देना उचित होगा।

4.1. यहां अपीलकर्ता "शिव डेवलपर्स" नाम से एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म है। ऐसा कहा गया है कि यह फर्म इमारतों के निर्माण के व्यवसाय में लगी हुई है और इसमें दो समान भागीदार शामिल हैं, अर्थात् श्री सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी और श्री जिग्नेश

---

1 संक्षेप में, 'उच्च न्यायालय'

2 संक्षेप में, ट्रायल कोर्ट'

3 संक्षेप में 'कोड'

4 संक्षेप में, '1932 का अधिनियम'

कनुभाई देसाई। उक्त श्री सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी को इस फर्म का 'प्रशासक' भी कहा जाता है और उन्होंने फर्म की ओर से मुकदमा दायर किया है।

4.2. वादी-अपीलकर्ता द्वारा दायर किए गए मुकदमे में, "अक्षरे डेवलपर्स" नाम की एक साझेदारी फर्म को प्रतिवादी क्र० 1 (यहां उत्तरवादी क्र० 1) के रूप में रखा गया है, जबकि प्रतिवादी क्र० 2 से 4 अर्थात् दिनेशभाई भाईलाल भाई पटेल, अर्जुनसिंह नारायणसिंह राजपूत, और रणजीतसिंह नारायणसिंह राजपूत (यहां उत्तरवादी क्र० 2 से 4 तक) को रखा गया है। प्रतिवादी क्र० 1 को फर्म के साझेदार के रूप में शामिल हुए हैं। जैसा कि इसके बाद देखा जाएगा, इस फर्म की संरचना, "अक्षरे डेवलपर्स" नाम से, जिसमें उक्त व्यक्ति साझेदार हैं, वादी-अपीलकर्ता द्वारा दायर किए गए मुकदमे में स्वयं विवाद का विषय है। वडोदरा नगर निगम के नगर आयुक्त और नगर विकास अधिकारी को भी मुकदमे में प्रतिवादी क्र० 5 और 6 के रूप में शामिल किया गया है, लेकिन वे इस अपील की विषय-वस्तु के संबंध में प्रतिवादी पक्ष नहीं हैं।

5. अब, हम अपीलकर्ता के मामले के प्रासंगिक पहलुओं का संक्षेप में उल्लेख कर सकते हैं, जैसा कि वादी के कथनों से अस्तित्व में आ रहा है।

5.1. वादी-अपीलकर्ता ने कहा है कि 26.11.2013 को, अपीलकर्ता और उत्तरवादी क्र० 2 और 3 ने टीका संख्या 5/3, सिटी सर्वे संख्या 104, 105, 132, 106/ए, सिटी सर्वे विभाग-बी में, कलाल पीठा रोड, हुजरातपगा, उप-जिला वडोदरा पर स्थित, एक पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से 232.81 वर्ग मीटर एक संपत्ति (खुली भूमि) खरीदी। अपीलकर्ता के अनुसार, मुकदमे की संपत्ति में उसका हिस्सा 60% था और उत्तरवादी क्र० 2 और 3 के संबंधित शेयर 20% थे।

5.2. आगे कहा गया है कि 22.04.2014 को, फर्म नाम "अक्षरे डेवलपर्स" द्वारा चार साझेदारों के साथ एक नई साझेदारी बनाई गई थी, अर्थात्, सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी (अपीलकर्ता फर्म के भागीदार और प्रशासक भी हैं) और उत्तरवादी क्र० 2, 3 और 4। वादी के कथन के अनुसार, उक्त साझेदारी का गठन विशेष रूप से वाद संपत्ति से संबंधित परियोजना के उद्देश्य से किया गया था और साझेदारी का कार्यकाल पूरा होने तक ही सीमित था। फर्म के निगमन की तिथि यानी 22.04.2014 को भागीदारी द्वारा एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये गए थे और यह

---

[5] इसके बाद इसे 'मुकदमा संपत्ति' के रूप में जाना जाएगा

[6] संक्षेप में, 'एमओयू'

एमओयू में सहमति व्यक्त की गई थी कि परियोजना से होने वाली आय से, सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी को 1,00,00,000/- रुपये (एक करोड़ रुपये) की एक निश्चित राशि का भुगतान किया जाएगा, साथ ही अर्जित लाभ का 5-10% भी दिया जाएगा। प्रोजेक्ट पूर्ण होने पर। अपीलकर्ता के अनुसार, उक्त एमओयू में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया था कि एमओयू के सभी पक्ष "अक्षरे डेवलपर्स" फर्म के भागीदार थे और उसी के आधार पर एमओयू में प्रवेश किया जा रहा था।

5.3. अपीलकर्ता की शिकायत इस प्रकार बताई गई है कि घटनाओं के नए मोड़ में, , उत्तरवादी क्र० 2 और 3 ने "अक्षरे डेवलपर्स" के समान नाम और शैली के तहत एक और फर्म का गठन तिथि 23.02.2015 को किया, लेकिन इसमें सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी को शामिल नहीं किया गया और उत्तरवादी क्र० 4 भागीदार के रूप में। यह फर्म, जैसा कि 23.02.2015 को गठित किया गया था, यहां उत्तरवादी क्र० 1 है और यह आरोप लगाया गया है कि इसे उत्तरवादी क्र० 2 और 3 द्वारा गुप्त रूप से और धोखाधड़ी से गठित और पंजीकृत किया गया है। आगे यह भी आरोप लगाया गया है कि उत्तरवादी क्र० 1 फर्म के गठन के अगले ही दिन, यानी 24.02.2015 को, उत्तरवादी क्र० 2 और 3 ने एक बिक्री विलेख निष्पादित किया, जिससे मुकदमे में अपीलकर्ता का 60% हिस्सा प्राप्त हुआ संपत्ति इस फर्म अक्षराय डेवलपर्स द्वारा अपीलकर्ता फर्म शिव डेवलपर्स की ओर से कार्य करने वाले सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी से खरीदी गई थी। आगे यह भी आरोप लगाया गया है कि बिक्री पर विचार के लिए अपीलकर्ताओं के पक्ष में जारी किए गए चेक अनादरित हो गए थे।

5.4. अपीलकर्ता के अनुसार, सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी (अपीलकर्ता फर्म की ओर से प्रतिनिधि) इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि 23.02.2015 को, उत्तरवादी क्र० 2 और 3 ने स्वयं का और उत्तरवादी क्रमांक 4 का कोई उल्लेख किए बिना के "अक्षरे डेवलपर्स" नाम के तहत एक साझेदारी फर्म पंजीकृत की थी; और यह कि सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी को पूरा विश्वास था कि अपीलकर्ता फर्म की संपत्ति उस फर्म को बेची जा रही थी, जिसमें साझेदारी विलेख और एमओयू दिनांक 22.04.2014 के अनुसार वह भी भागीदार था।

5.5. उपरोक्त दावों के साथ, अपीलकर्ता ने यह आरोप लगाया है उत्तरवादी क्र० 2 और 3 ने वाद संपत्ति एक के माध्यम से प्राप्त की है अच्छी तरह से रची गई साजिश के माध्यम से और बिक्री पर विचार किए बिना ही मुकदमा संपत्ति प्राप्त कर ली है; और विक्रय विलेख दिनांक 24.02.2015 में सहमत शर्तों के अनुसार, यदि बिक्री विचार के लिए जारी किए गए चेक का भूगतान नहीं किया गया, तो विक्रय विलेख को अमान्य माना जाएगा। तदनुसार, अपीलकर्ता ने शाश्वत निषेधाज्ञा की मांग कर हुए विषय वाद संस्थित किया है और दिनांक 24.02.2015 को विक्रय पत्र को अमान्य घोषित कर दिया गया।

वादपत्र को अस्वीकार करने की मांग करने वाला आवेदन: ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय के अलग-अलग विचार

6. अपीलकर्ता द्वारा दायर किए गए मुकदमे में, उत्तरवादी क्र० 1 से 3 सम्मन के जवाब में उपस्थित हुए और 1932 के अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में वादपत्र की अस्वीकृति के लिए एक आवेदन दायर किया।

6.1. उत्तरवादियों ने उक्त आवेदन में प्रस्तुत किया कि वादी-अपीलकर्ता ने यह दिखाने के लिए न तो कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि मुकदमा दायर करने वाली फर्म एक पंजीकृत साझेदारी फर्म थी और न ही वादी में उस संबंध में कोई दावा किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया कि विचाराधीन विक्रय विलेख (4/4 चिह्नित) एक पंजीकृत दस्तावेज़ था और इसे सुनीलभाई सोमाभाई अजमेरी द्वारा फर्म शिव डेवलपर्स के प्रशासक-साझेदार के रूप में निष्पादित किया गया था। उत्तरदाताओं ने इस प्रकार तर्क दिया कि पंजीकृत बिक्री दस्तावेज़ के खिलाफ घोषणा का मुकदमा, जब वादी ने एक पंजीकृत फर्म नहीं दिखाया था, 1932 के अधिनियम की धारा 69 द्वारा वर्जित था। दूसरे शब्दों में, उत्तरदाताओं का तर्क यह था कि 1932 के अधिनियम की धारा 69 के आदेश के अनुसार, वादी, एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म होने के नाते, किसी भी समझौते/संविदा से उत्पन्न अधिकारों के संबंध में मुकदमा दायर करने से रोक दिया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया कि ऑर्डर XXX सीपीसी के अनुसार, फर्म की ओर से कोई भी व्यक्ति जो फर्म का भागीदार है, मुकदमा दायर कर सकता है, लेकिन मुकदमा दायर करने वाले व्यक्ति ने यह दिखाने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया कि एक भागीदार था, उक्त फर्म में।

6.2. वाद-पत्र को अस्वीकार करने के लिए दायर किए गए आवेदन का वादी-अपीलकर्ता ने अन्य बातों के साथ इन दलीलों के साथ विरोध किया कि 1932 के अधिनियम की धारा 69 धोखाधड़ी के मामले में लागू नहीं होती है। आगे यह प्रस्तुत किया गया कि वादी फर्म अक्षरे डेवलपर्स का भागीदार रहा है और यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि उक्त साझेदारी फर्म अक्षरे डेवलपर्स को भंग कर दिया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया कि मुकदमे का विषय धोखाधड़ी और धोखाधड़ी के कारण बिक्री दस्तावेज़ को रद्द करना था; और इस प्रकृति के मुकदमे को 1932 के अधिनियम की धारा 69 द्वारा वर्जित नहीं किया गया था। इस प्रकार, वादी-अपीलकर्ता की ओर से प्राथमिक तर्क यह था कि 1932 के अधिनियम की जी धारा 69 की रोक आकर्षित नहीं होती क्योंकि विषय मुकदमा फर्म के व्यवसाय से संबंधित अनुबंध से उत्पन्न किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए नहीं था, बल्कि वादी के वैधानिक अधिकारों को लागू करने के लिए था। यह भी प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान मुकदमे में ऑर्डर XXX सीपीसी पर कोई रोक नहीं थी क्योंकि इसमें कोई विवाद नहीं था। प्रतिवादी साझेदारी फर्म के संबंध में थे और उन्होंने भी प्रार्थना नहीं की थी।

साझेदारों के नाम घोषित करने हेतु। वादी-अपीलकर्ता की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा उठाए जाने वाली दलीलों के संबंध में आवश्यक साक्ष्य का नेतृत्व करना आवश्यक था और, इस प्रकार, आवेदन दिए गए चरण में रखरखाव योग्य नहीं था।

7. अपने आदेश दिनांक 07.04.2017 में, ट्रायल कोर्ट ने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर ध्यान दिया और 1932 के अधिनियम की धारा 69 में निहित प्रावधानों के साथ-साथ पार्टियों की ओर से उद्धृत निर्णयों की भी जांच की। इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों और मामले के तथ्यात्मक पहलुओं पर ध्यान देने के बाद, ट्रायल कोर्ट ने अन्य बातों के साथ-साथ उत्तरवादी की ओर से आग्रह की गई दलीलों को इस कारण से खारिज कर दिया कि प्रथम दृष्टया यह साबित नहीं हुआ था बिक्री दस्तावेज़ (4/4 चिह्नित) "शिव डेवलपर्स" नाम की साझेदारी के व्यवसाय से संबंधित एक समझौते/अनुबंध से संबंधित था। ट्रायल कोर्ट ने वादी के मामले पर आगे गौर किया कि बिक्री पर विचार की राशि प्राप्त नहीं हुई थी और राय दी कि बिक्री की राशि की गैर-प्राप्ति के कारण मुकदमा 1932 के अधिनियम की धारा 69 के प्रावधानों से वर्जित नहीं होगा। उस फर्म के साझेदारों द्वारा प्रतिफल जिसने एक पंजीकृत दस्तावेज़ द्वारा संपत्ति बेची थी और बिक्री प्रतिफल की राशि प्राप्त करने का कानूनी अधिकार था। ट्रायल कोर्ट ने आगे कहा कि आदेश XXX सीपीसी में निहित प्रावधानों द्वारा मुकदमे को खारिज करने की परिकल्पना नहीं की गई थी। इसलिए, उत्तरवादियों द्वारा दिए गए आवेदन को ट्रायल कोर्ट ने खारिज कर दिया था।

8. उत्तरवादियों (उत्तरवादी क्र० I से 3 तक) ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन के माध्यम से ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेशों को चुनौती दी। इस पुनरीक्षण आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय एवं आदेश दिनांक 15.02.2018 द्वारा अनुमति दी गई है।

8.1. उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी/संशोधितवादियों की ओर से यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता फर्म एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म है, बिक्री के संविदा से उत्पन्न अधिकार के प्रवर्तन के लिए इस फर्म द्वारा दायर मामला पूरी तरह से धारा के दायरे में है। 1932 के अधिनियम की धारा 69 और ट्रायल कोर्ट ने कानून के लागू प्रावधानों के साथ-साथ स्थापित सिद्धांतों के विपरीत कार्यवाही करते हुए वादी की अस्वीकृति के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया था। बाध्यकारी निर्णयों में प्रतिपादित किया गया।

8.2. इसके विपरीत, वादी-अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया था वर्तमान मामले में विशिष्ट धोखाधड़ी का आरोप लगाया गया है; वो सुनीलभाई

सोमाभाई अजमेरी और प्रतिवादी क्र० 2 और 3 ने स्वतंत्र क्षमता में अनुबंध में प्रवेश किया, जिसे बाद में, उक्त प्रतिवादियों के डिजाइन के एक हिस्से के रूप में, एक पंजीकृत बिक्री विलेख में परिवर्तित कर दिया गया। यह तर्क दिया गया कि वाद-पत्र में उठाए गए मुद्दों पर परीक्षण के बाद निर्णय लेने की आवश्यकता है और आदेश VII नियम 11(द) सीपीसी के तहत वाद-पत्र को खारिज नहीं किया जा सकता है।

9. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर ध्यान देने के बाद, उच्च न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत किया, जिसमें बिक्री दस्तावेज़ के आधार पर उसका निष्कर्ष भी शामिल था, कि विचाराधीन लेनदेन एक स्वतंत्र था और मुकदमे में किया गया दावा किसी कारण से उत्पन्न नहीं हुआ था। फर्म का कोई भी व्यावसायिक लेनदेन या व्यावसायिक लेनदेन से संबंधित या उससे उत्पन्न होने वाला अनुबंध। उच्च न्यायालय ने बिक्री विलेख को धोखाधड़ी, अवैध और शून्य घोषित करने के लिए याचिका में की गई प्रार्थनाओं पर भी ध्यान दिया और उत्तरवादी को मुकदमे की भूमि पर कोई भी योजना शुरू करने का कोई अधिकार नहीं है।

9.1. इसके बाद उच्च न्यायालय ने 1932 के अधिनियम की धारा 69 के साथ पढ़े गए आदेश XXX नियम 1 और 2 सीपीसी के संदर्भ में उत्तरवादियों की प्रस्तुतियों का उल्लेख किया और, उक्त धारा 69 को पुन: प्रस्तुत करने से पहले, प्रासंगिक निष्कर्षों में से एक का अपना समर्थन दर्ज किया। ट्रायल कोर्ट निम्नलिखित शर्तों में: -

"23..... इस प्रावधान को पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान ट्रायल जज ने सही ही कहा है कि विचाराधीन लेनदेन वादी फर्म के व्यवसाय से उत्पन्न नहीं हो रहा है और न ही वादी फर्म से दावा उत्पन्न हुआ है....

9.2. इसके बाद, धारा 69(2) के संदर्भ में, उच्च न्यायालय ने माना कि चुनौती के तहत लेनदेन दिनांक 24.02.2015 का एक बिक्री दस्तावेज था, जिसे वादी, एक अपंजीकृत फर्म, ने उत्तरवादियों के साथ दर्ज किया था, जो तीसरे पक्ष थे; और माना कि, फर्म के पंजीकरण न होने के प्रभाव से, मुकदमा चलने योग्य नहीं प्रतीत होता है। उक्त निष्कर्ष इस प्रकार हैं:-

> "24.... मौजूदा मामले में जो प्रासंगिक प्रावधान माने जाने हैं, वे धारा 69 की उपधारा 2 हैं, जो इंगित करता है कि किसी अनुबंध से उत्पन्न अधिकार को लागू करने के लिए किसी भी अदालत में या उसकी ओर से कोई मुकदमा दायर नहीं किया जाएगा। किसी तीसरे पक्ष के खिलाफ एक फर्म, जब तक कि फर्म पंजीकृत न हो और मुकदमा करने वाले व्यक्तियों को फर्म के रजिस्टर में फर्म में भागीदार के रूप में दिखाया गया हो या दिखाया गया हो। यहां वह मामला है जिसमें चुनौती के अधीन लेनदेन दिनांक 24.02.2015 की बिक्री है वादी द्वारा दर्ज किया गया एक दस्तावेज़ है

प्रतिवादियों के विरुद्ध फर्म जो तृतीय पक्ष हैं और निर्विवाद रूप से वादी फर्म एक अपंजीकृत फर्म है, और इसलिए, गैर-पंजीकरण के प्रभाव से, मुकदमा चलने योग्य नहीं प्रतीत होता है।

9.3. इसके बाद, उच्च न्यायालय ने बार में उद्धृत विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया, जिसमें **पुरूषोत्तम और अन्य वी. शिवराज फाइन आर्ट लिथो वर्क्स और अन्य** का मामला भी शामिल था, जैसा कि **(2007) 2 जी.एल.एच. 406[= (2007) 15 एससीसी 58]** में रिपोर्ट किया गया है। और उस संबंध में, निम्नानुसार[7] मनाया गया: -

"33. एक अन्य निर्णय जिसे सेवा में लागू किया गया है वह है पुरूषोत्तम (सुप्रा) के मामले में एक निर्णय और इसका हवाला देकर यह तर्क उठाया गया है कि धारा 69(2) की रोक इस तथ्य की पृष्ठभूमि में लागू नहीं होगी। हालाँकि, फिर से यदि उस निर्णय के बारे में तथ्य देखा जाए तो यहां तक कि उक्त निर्णय का मुख्य नोट भी यह स्पष्ट करता है कि यदि लागू किया जाने वाला अधिकार किसी अनुबंध से उत्पन्न नहीं होता है जिसमें अपंजीकृत फर्म एक पार्टी है या शामिल नहीं है अपंजीकृत फर्म के व्यवसाय के संबंध में, धारा 69(2) के तहत रोक लागू नहीं होगी। इसके विपरीत, यह निर्णय याचिकाकर्ताओं को इस विवाद को प्रमाणित करने में मदद करता है जैसा कि कार्यवाही में देखा गया है कि वहाँ है वादी फर्म द्वारा और उसकी ओर से किया गया एक लेन-देन, जो निर्विवाद रूप से अपंजीकृत फर्म है और मांगा गया दावा और राहत उस अनुबंध से उत्पन्न हो रही है, जिसमें प्रवेश किया गया है, जिसमें वादी अपंजीकृत एक बहुत बड़ी पार्टी है।

इसलिए, इसके विपरीत, यह निर्णय उत्तरवादी की सहायता के लिए नहीं आएगा क्योंकि उस विशेष मामले में, अनुबंध न तो अपंजीकृत फर्म द्वारा दर्ज किया गया था और न ही यह अपने व्यवसाय के दौरान अपंजीकृत फर्म द्वारा दर्ज किया गया था, और इसलिए, मुकदमे को कायम रखने योग्य माना गया।"

9.4. अंततः, विभिन्न निर्णयों के विश्लेषण के बाद, उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति दी और निम्नलिखित शब्दों में वादपत्र की अस्वीकृति के परिणामी प्रभाव के साथ ट्रायल कोर्ट के दिनांक 07.04.2017 के आदेश को रद्द कर दिया: -

"36. उपरोक्त निर्णयों का समग्र विश्लेषण जो है सेवा में लगाया गया और इसकी निर्विवाद पृष्ठभूमि इस मामले की परिस्थितियों से यह स्पष्ट हो गया है कि मुकदमा हम उच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित विभिन्न अन्य निर्णयों पर विस्तार नहीं कर रहे हैं लेकिन किया है इसके निहितार्थ के लिए उपरोक्त अनुच्छेद 33 को पुन: प्रस्तुत किया गया है, जैसा कि इसमें दिखाई देगा इसके बाद की चर्चा बाद में

ऐसी कार्यवाही जो सी.पी.सी. के आदेश 30 के साथ पठित अधिनियम की धारा 69(2) से प्रभावित होती है, कोई कारण नहीं है कि आदेश 7 नियम 11(द) के उद्देश्य के विरुद्ध ऐसी गैर-रखरखाव योग्य कार्यवाही की अनुमति दी जाए। इसलिए, वैधानिक प्रावधानों को पूर्ण रूप से लागू करके, न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार में गंभीर त्रुटि की गई है, और इस प्रकार वर्तमान संशोधन आवेदन की अनुमति दी जानी चाहिए, और दिनांक 07.04.2017 का आक्षेपित आदेश प्र.पी 11 के नीचे पारित किया गया है। विद्वान 9 अतिरिक्त वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, वडोदरा द्वारा 2015 के विशेष सिविल सूट संख्या 333 में वादपत्र की अस्वीकृति के परिणामी प्रभाव से रद्द कर दिया गया है। "

10. उच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 15.02.2018 को वादी-अपीलकर्ता द्वारा इस अपील में चुनौती दी गई है।

प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ

11. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि हाई कोर्ट यह समझने में विफल रहा है कि 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) तीसरे पक्ष के खिलाफ एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म द्वारा सभी मुकदमों पर रोक नहीं लगाती है। वर्तमान मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में, मुकदमा धारा 69(2) से प्रभावित नहीं होता है क्योंकि अनुबंध फर्म के नियमित व्यापारिक लेनदेन में नहीं है; और 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) में प्रयुक्त शब्द "अनुबंध के तहत उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करना" केवल फर्म के व्यावसायिक लेनदेन के संबंध में अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकारों को दर्शाता है। विद्वान वकील ने **हल्दीराम भुजियावाला और अन्य बनाम आनंद कुमार दीपक कुमार और अन्य: (2000) 3 एससीसी 250 और पुरूषोतम** (सुप्रा) **के निर्णयों पर भरोसा किया है।**

11.1. विद्वान वकील ने इस तथ्य पर ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों के संदर्भ में के साथ अपने तर्कों को पूरक किया है कि विचाराधीन अनुबंध, जिस पर मुकदमा आधारित है, अपंजीकृत फर्म के व्यवसाय के संबंध में नहीं था। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, अपीलकर्ता का मुकदमा 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) के प्रावधानों के तहत वर्जित नहीं है। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय ने लाने में त्रुटि की है 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) के दायरे में किसी अपंजीकृत फर्म द्वारा तीसरे पक्ष के खिलाफ सभी मुकदमे।

11.2. उपरोक्त के अतिरिक्त विद्वान अधिवक्ता ने इस पर भी बल दिया है अधिनियम की धारा 69(2) किसी अपंजीकृत व्यक्ति के मुकदमे पर रोक नहीं लगाती है वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून के प्रवर्तन के लिए साझेदारी फर्म।

ठीक है, जैसा कि इस न्यायालय ने **हल्दीराम भुजियावाला** (सुप्रा) में कहा था। इस संबंध में, विद्वान वकील ने ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों का भी उल्लेख किया है कि चूंकि बिक्री का अनुबंध एक पंजीकृत बिक्री दस्तावेज के माध्यम से प्रभावित हुआ है, इसलिए उक्त बिक्री के खिलाफ प्रतिफल का भुगतान न करने पर अपीलकर्ता फर्म को इसे लागू करने का अधिकार मिल जाता है। बिक्री दस्तावेज़ की शर्तें और अधिकार संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 के तहत कानून द्वारा प्राप्त किया जाता है।

12. इसके विपरीत, प्रतिस्पर्धी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि बिक्री दस्तावेज़ दिनांक 23.02.2015 को अपंजीकृत फर्म के प्रशासक-साझेदार द्वारा निष्पादित किया गया था, न कि उसकी व्यक्तिगत क्षमता में। नतीजतन, बिक्री दस्तावेज़ फर्म के व्यवसाय से संबंधित था। इस प्रकार, विद्वान वकील ने उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष का समर्थन किया है कि मुकदमा 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) के तहत वर्जित था।

12.1. उत्तरवादियों के विद्वान वकील ने **उमेश गोयल बनाम हिमाचल प्रदेश को-ऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड: (2016) 11 एससीसी 313 और फारूक बनाम संध्या एंथ्रेपर कुरिशिंगल और अन्य: (2018) 12 एससीसी 580**, के मामलों का उल्लेख किया है। इस दलील के लिए कि किसी अपंजीकृत साझेदारी फर्म द्वारा दायर कोई भी मुकदमा 1932 के अधिनियम की धारा 69 के अंतर्गत आता है; और यदि उक्त मुकदमा उस अनुबंध से उत्पन्न अधिकारों के प्रवर्तन के लिए दायर किया गया है जिसमें उक्त अपंजीकृत साझेदारी फर्म एक पार्टी है, तो इसे गैर-रखरखाव योग्य बना दिया जाएगा।

12.2. इस प्रकार, प्रतिवाद करने वाले उत्तरवादियों के विद्वान वकील तर्क देंगे कि उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन को सही ढंग से अनुमति दी है और अपीलकर्ता फर्म द्वारा दायर वाद को सही ढंग से खारिज कर दिया है।

13. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर उत्सुकता से विचार करने और लागू कानून के संदर्भ में रिकॉर्ड की जांच करने के बाद, हमारा स्पष्ट विचार है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 15.02.2018 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) की रोक अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमे पर लागू नहीं होती है।

1932 के अधिनियम की धारा 69 और प्रासंगिक सिद्धांत :

14. इस मामले में उठाए गए सवालों से निपटने के लिए, हम 1932 के अधिनियम की धारा 69 में निहित प्रावधानों पर ध्यान दे सकते हैं:

जो इस प्रकार है:-

"69. **गैर-पंजीकरण का प्रभाव**.- (1) किसी अनुबंध से उत्पन्न होने वाले या इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार को लागू करने के लिए किसी फर्म में भागीदार के रूप में मुकदमा करने वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी भी न्यायालय में कोई मुकदमा दायर नहीं किया जाएगा। फर्म या कोई भी व्यक्ति जिस पर फर्म में भागीदार होने या होने का आरोप है, जब तक कि फर्म पंजीकृत न हो और मुकदमा करने वाला व्यक्ति फर्म के रजिस्टर में फर्म में भागीदार के रूप में दिखाया गया हो या दिखाया गया हो।

(2) किसी अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने के लिए किसी फर्म द्वारा या उसकी ओर से किसी तीसरे पक्ष के खिलाफ किसी भी न्यायालय में कोई मुकदमा तब तक स्थापित नहीं किया जाएगा जब तक कि फर्म पंजीकृत न हो और मुकदमा करने वाले व्यक्तियों को फर्मों के रजिस्टर में दिखाया गया हो या दिखाया गया हो, फर्म में भागीदार।

(3) उप-धारा (1) और (2) के प्रावधान किसी अनुबंध से उत्पन्न अधिकार को लागू करने के लिए सेट-ऑफ या अन्य कार्यवाही के दावे पर भी लागू होंगे, लेकिन प्रभावित नहीं करेंगे, -

(ए) किसी फर्म के विघटन के लिए या किसी विघटित फर्म के खातों के लिए मुकदमा करने के किसी भी अधिकार का प्रवर्तन, या किसी विघटित फर्म की संपत्ति का एहसास करने का कोई अधिकार या शक्ति, या

(बी) एक दिवालिया भागीदार की संपत्ति का एहसास करने के लिए प्रेसीडेंसी-टाउन इन्सॉल्वेंसी एक्ट, 1909 (1909 का 3) या प्रांतीय इन्सॉल्वेंसी एक्ट, 1920 (1920 का 5) के तहत एक आधिकारिक समनुदेशिती, रिसीवर या न्यायालय की शक्तियां।

(4) यह धारा लागू नहीं होगी,-

(ए) फर्मों या फर्मों के साझेदारों के लिए, जिनका उन क्षेत्रों में व्यवसाय का कोई स्थान नहीं है, जिन पर यह अधिनियम लागू होता है, या जिनके उक्त क्षेत्रों में व्यवसाय के स्थान उन क्षेत्रों में स्थित हैं, जहां धारा 56 के तहत अधिसूचना द्वारा, यह अध्याय लागू होता है लागू न करें, या

(बी) किसी भी मुकदमे या मुजरा के दावे का मूल्य एक सौ रुपये से अधिक नहीं है, जो प्रेसीडेंसी-नगरों में, प्रेसीडेंसी लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1882 (1882 का 5) की धारा 19 में निर्दिष्ट प्रकार का नहीं है, या, प्रेसीडेंसी-नगरों के बाहर, प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 (1887 का 9) की दूसरी अनुसूची में निर्दिष्ट प्रकार का नहीं है, या निष्पादन में किसी भी कार्यवाही या किसी से संबंधित या उत्पन्न होने वाली अन्य कार्यवाही के लिए ऐसा मुकदमा या दावा।"

15. हमारे विचार में, इस मामले में उत्पन्न होने वाले प्रश्नों का उत्तर **राप्टाकोस ब्रेट एंड कंपनी लिमिटेड बनाम गणेश संपत्ति: (1998) 7 एससीसी 184** के मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के संदर्भ में सीधे तौर पर दिया जा सकता है, जो **हल्दीराम भुजियावाला** और **पुरूषोत्तम** (सुप्रा) के मामलों में इस न्यायालय द्वारा आगे समझाया और लागू किया गया है। हम **हल्दीराम भुजियावाला** (सुप्रा) के मामले में स्पष्ट रूप से उजागर किए गए सिद्धांतों पर ध्यान दे सकते हैं कि 1932 के अधिनियम की धारा 69 (2) की रोक को आकर्षित करने के लिए, प्रश्न में अनुबंध तीसरे पक्ष के साथ फर्म द्वारा किया गया अनुबंध होना चाहिए। पार्टी प्रतिवादी और वादी फर्म द्वारा अपने व्यापारिक लेनदेन के दौरान दर्ज की गई पार्टी भी होनी चाहिए; और 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) एक अपंजीकृत फर्म द्वारा दायर मुकदमे पर रोक नहीं है, यदि वह वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून अधिकार के प्रवर्तन के लिए है।

16. संक्षेप में कहें तो, **हल्दीराम भुजियावाला** (सुप्रा) के मामले में प्रासंगिक तथ्यात्मक पहलू इस प्रकार थे: उस मामले में मुकदमा वादी द्वारा दायर किया गया था, जिसमें प्रतिवादियों को ट्रेडमार्क का उल्लंघन करने और ट्रेडमार्क और ट्रेडमार्क/नाम 'हल्दीराम भुजियावाला' का उपयोग करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की मांग की गई थी। दो वादी थे, पहला एक साझेदारी फर्म थी जिसमें मूलचंद के तीन बेटे शामिल थे जबकि दूसरा वादी उनका चौथा बेटा था। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि "हल्दीराम भुजियावाला" के नाम से यह व्यवसाय वर्ष 1941 से गंगा बिशन उर्फ हल्दीराम द्वारा किया जा रहा था। वर्ष 1965 में, उन्होंने अपने दो बेटों मूलचंद और शिव किशन के साथ एक साझेदारी बनाई और उनकी बहु कमला देवी (दूसरे बेटे आर.एल. अग्रवाल की पत्नी) को इसी नाम से व्यवसाय चलाने के लिए और उक्त फर्म को उक्त व्यापार नाम का पंजीकरण प्रदान किया गया था। हालाँकि, 16.11.1974 को, उक्त साझेदारी को भंग कर दिया गया था और विघटन विलेख के संदर्भ में, उपरोक्त ट्रेडमार्क पश्चिम बंगाल राज्य को छोड़कर पूरे देश के लिए विशेष रूप से मूलचंद के हिस्से में आ गया, जबकि उक्त श्रीमती कमला देवी को पश्चिम बंगाल राज्य के ट्रेडमार्क अधिकारों का स्वामित्व दिया गया। मूलचंद के चार बेटों ने ट्रेडमार्क के बाद के संयुक्त मालिकों के रूप में अपना नाम दर्ज कराया। उनमें से तीन ने वर्ष 1983 में एक साझेदारी बनाई (विषय मुकदमे में वादी नंबर 1) और चांदनी चौक, दिल्ली में एक दुकान चला रहे थे। इस बीच, 10.10.1977 को, उक्त आर.एल. अग्रवाल और उनके बेटे ने 16.11.1974 के विघटन विलेख का खुलासा किए बिना खुद को इसके पूर्ण मालिक होने का दावा करते हुए उसी ट्रेडमार्क के पंजीकरण के लिए कलकत्ता में आवेदन किया। एक अशोक कुमार, श्रीमती कमला देवी का पुत्र, ने एक नई फर्म बनाई और आर्य समाज रोड, करोल बाग, नई दिल्ली में एक दुकान खोली । दी गई परिस्थितियों में, विषय के वादी

एक मुकदमे ने उक्त ट्रेडमार्क का उपयोग करने के लिए अपने अधिकारों का दावा करते हुए निषेधाज्ञा, क्षति और सामग्री आदि को नष्ट करने की राहत का दावा किया। प्रतिवादियों ने इस कारण से वाद को अस्वीकार करने की मांग की कि मुकदमा दायर करने की तिथि पर वादी संख्या एक पंजीकृत साझेदारी फर्म नहीं थी। आवेदन को ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट ने भी खारिज कर दिया था। इसलिए, मामला इस न्यायालय के समक्ष अपील में था। उक्त मामले में निर्धारण के लिए उत्पन्न बिंदुओं को इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शर्तों में तैयार किया गया था: -

"8. विचार के लिए जो बिंदु उठते हैं वे हैं:

(i) क्या धारा 69(2) किसी फर्म द्वारा मुकदमे को रोकती है जो मुकदमे की तारीख पर पंजीकृत नहीं है, जहां वैधानिक अधिकार के रूप में ट्रेडमार्क के संबंध में स्थायी निषेधाज्ञा और क्षति का दावा किया जाता है या पासिंग-ऑफ पर लागू सामान्य कानून सिद्धांतों को लागू किया जाता है।

(ii) क्या धारा 69(2) में "अनुबंध से उत्पन्न" शब्द केवल उस स्थिति को संदर्भित करते हैं जहां एक अपंजीकृत फर्म अपने व्यवसाय के दौरान प्रतिवादी के साथ फर्म द्वारा किए गए अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू कर रही है या क्या धारा 69(2) के तहत रोक को मुकदमे की संपत्ति के स्वामित्व के स्रोत के रूप में वादी से असंबद्ध वादपत्र में निर्दिष्ट किसी भी अनुबंध तक बढ़ाया जा सकता है?

16.1. पहले प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हुए, इस न्यायालय ने **राप्टाकोस ब्रेट एंड कंपनी लिमिटेड** (सुप्रा) में पिछले निर्णय का उल्लेख किया और इस प्रकार कहा: -

"9. यह प्रश्न है कि क्या धारा 69(2) एक अपंजीकृत फर्म द्वारा दायर मुकदमे पर रोक है, भले ही एक वैधानिक अधिकार लागू किया जा रहा हो या भले ही केवल एक सामान्य कानून अधिकार लागू किया जा रहा हो, इस न्यायालय में सीधे विचार के लिए आया। राप्टकस ब्रेट कंपनी लिमिटेड बनाम गणेश प्रॉपर्टी [(1998) 7 एससीसी 184]। **उस मामले में, मजमुदार, जे. ने बैंच के लिए बोलते हुए स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त किया कि धारा 69(2) एक मुकदमे के माध्यम से प्रवर्तन पर रोक नहीं लगा सकती है। वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून अधिकार के संबंध में एक अपंजीकृत फर्म द्वारा**। उस मामले के तथ्यों पर, यह माना गया था कि पट्टे की समाप्ति पर किरायेदार को बेदखल करने का अधिकार "अनुबंध से उत्पन्न होने वाला" अधिकार नहीं था, बल्कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के तहत एक सामान्य कानून अधिकार या वैधानिक अधिकार था । तथ्य यह है कि उस मामले में वादपत्र एक पट्टे और उसकी समाप्ति के संदर्भ में था, इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। इसलिए, उक्त मुकदमे को वर्जित नहीं माना गया। ऐसा प्रतीत होता है

लगता है कि उस मामले में वादी में पट्टे का संदर्भ स्पष्ट रूप से एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में माना गया था। इसलिए यह मामला सीधे तौर पर प्रासंगिक है। **उक्त निर्णय के बाद, वर्तमान मामले में भी यह माना जाना चाहिए कि यदि कोई वैधानिक अधिकार या सामान्य कानून अधिकार लागू किया जा रहा है तो कोई मुकदमा धारा 69(2) द्वारा वर्जित नहीं है।**

xxxx xxxx xxxx

11.इसी तरह, यदि किसी पंजीकृत ट्रेडमार्क और उसके उल्लंघन के आधार पर स्थायी निषेधाज्ञा या क्षति की राहत का दावा किया जा रहा है, तो **मुकदमा** ट्रेड मार्क्स अधिनियम के तहत **वैधानिक अधिकार के आधार पर माना जाना** चाहिए और हमारे विचार में है, धारा 69(2) द्वारा वर्जित नहीं है।

12. उपरोक्त कारणों से, इन दोनों स्थितियों में, हमारे समक्ष मामले में अपंजीकृत साझेदारी को "अनुबंध से उत्पन्न" किसी भी अधिकार को लागू करने वाला नहीं कहा जा सकता है। इसलिए बिंदु 1 का निर्णय उत्तरवादी-वादी के पक्ष में किया जाता है।"

(जोर दिया गया)

16.2. इस न्यायालय ने 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) में प्रयुक्त शब्दों "अनुबंध के तहत उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करना" के दायरे को और उजागर किया; और रिपोर्टों और उदाहरणों के एक विस्तृत सर्वेक्षण के बाद, जिसके कारण उक्त प्रावधान तैयार हुआ और साथ ही इस बिंदु पर विभिन्न अधिकारियों के संदर्भ के बाद, इस न्यायालय ने प्रावधान के तर्क और उद्देश्य को समझाया कि इसका उद्देश्य उन लोगों की रक्षा करना था वाणिज्य जो व्यवसाय में साझेदारी फर्म के साथ सौदा करते हैं, क्योंकि व्यवसाय में सौदा करने से पहले उन्हें फर्म के भागीदारों के नाम जानने में सक्षम होना चाहिए; और धारा 69(2) की रोक फर्म के स्वामित्व वाली संपत्ति के स्वामित्व के स्रोत के रूप में वादी में उल्लिखित किसी भी और हर अनुबंध पर लागू नहीं होती है। इस न्यायालय ने आयोजित किया और समझाया

निम्नानुसार:-

"**23** आगे और अतिरिक्त लेकिन समान रूप से महत्वपूर्ण पहलू जिसे स्पष्ट किया जाना है वह यह है कि धारा 69(2) में संदर्भित अपंजीकृत फर्म द्वारा अनुबंध न केवल तीसरे पक्ष के प्रतिवादी के साथ किया जाना चाहिए ब**ल्कि होना चाहिए यह वादी फर्म द्वारा ऐसे तीसरे पक्ष प्रतिवादी के साथ वादी फर्म के व्यापारिक लेनदेन के दौरान किया गया समझौता भी हो सकता है।**

24...**प्रश्न का असली सार यह है कि विधायिका,**

जब इसने धारा 69(2) में "एक अनुबंध से उत्पन्न होने वाले" शब्दों का उपयोग किया, तो यह अपंजीकृत वादी फर्म द्वारा अपने प्रतिवादी ग्राहकों के साथ व्यावसायिक लेनदेन के दौरान किए गए अनुबंध का उल्लेख कर रहा है और इसका उद्देश्य वाणिज्य में उन लोगों की रक्षा करना है जो ऐसी पार्टनरशिप फर्म के साथ बिजनेस डील करते हैं। ऐसे तीसरे पक्ष जो साझेदारों के साथ सौदा करते हैं, उन्हें व्यवसाय में लेन-देन करने से पहले यह जानने में सक्षम बनाया जाना चाहिए कि फर्म के साझेदारों के नाम क्या हैं।

25 इसके अलावा, धारा 69(2) फर्म के स्वामित्व वाली संपत्ति के स्वामित्व के स्रोत के रूप में वादी में उल्लिखित किसी भी अनुबंध पर लागू नहीं होती है। यदि वादपत्र में ऐसे किसी अनुबंध का उल्लेख किया गया है तो यह केवल एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि अपंजीकृत फर्म द्वारा दायर वादपत्र मोटर कार पर फर्म के स्वामित्व के स्रोत को संदर्भित करता है और बताता है कि वादी ने एक अनुबंध के तहत एक विदेशी खरीदार से मोटर कार खरीदी और प्राप्त की है और प्रतिवादी ने इसे अनधिकृत रूप से हटा दिया है वादी फर्म के कब्जे से, यह स्पष्ट है कि मुकदमे में प्रतिवादी के खिलाफ कब्जे की राहत किसी भी अनुबंध से उत्पन्न नहीं होती है जो प्रतिवादी ने प्रतिवादी के साथ वादी फर्म के व्यवसाय के दौरान दर्ज की थी, बल्कि कथित अनधिकृत निष्कासन पर आधारित है प्रतिवादी द्वारा वादी फर्म की अभिरक्षा से वाहन की निकासी। ऐसी स्थिति में, तथ्य यह है कि अपंजीकृत फर्म ने अनुबंध के तहत किसी और से वाहन खरीदा है, वाहन के कब्जे के लिए प्रतिवादी पर मुकदमा करने के फर्म के अधिकार पर कोई असर नहीं पड़ता है। ऐसा मुकदमा चलने योग्य होगा और धारा 69(2) उस पर रोक नहीं होगी, भले ही फर्म मुकदमे की तारीख पर अपंजीकृत हो। वर्तमान मामले में स्थिति अलग नहीं है।"

(जोर दिया गया)

17. **हल्दीराम भुजियावाला** (सुप्रा) में पूर्वोक्त निर्णय पर इस न्यायालय द्वारा आगे विचार किया गया और इसे **पुरूषोत्तम** (सुप्रा) के मामले में निम्नानुसार लागू किया गया: -

"**24.** सम्मान के साथ, हम खुद को हल्दीराम भुजियावाला में प्रतिपादित सिद्धांतों से पूरी तरह सहमत पाते हैं। धारा 69(2) जिस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहती है और जिस हित की रक्षा करना चाहती है, उसे ध्यान में रखते हुए, बार को प्रवर्तन के लिए एक मुकदमे पर लागू होना चाहिए व्यवसायिक लेन-देन के दौरान किसी तीसरे पक्ष के साथ अपंजीकृत फर्म द्वारा किए गए अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार का ऐसा तीसरा पक्ष। यदि जिस अधिकार को लागू करने की मांग की गई है वह उत्पन्न नहीं होता है।

ऐसे संविदा से जिसमें अपंजीकृत फर्म एक पक्ष है, या किसी तीसरे पक्ष के साथ अपंजीकृत फर्म के व्यवसाय के संबंध में प्रवेश नहीं किया गया है, धारा 69(2) की बाधा लागू नहीं होगी।"

18. उत्तरवादी की ओर से उद्धृत निर्णयों में पूर्वगामी चर्चा के विपरीत कुछ भी नहीं पाया जाना चाहिए। **उमेश गोयल (**सुप्रा) का मामला अनिवार्य रूप से 1932 के अधिनियम की धारा 69(3) में निहित प्रावधान के संचालन और इस सवाल के मद्देनजर अभिव्यक्ति "अन्य कार्यवाही" की व्याख्या से संबंधित है कि क्या मध्यस्थ कार्यवाही और उसमें पारित पुरस्कार को "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति में पढ़ा जा सकता है। उक्त निर्णय का वर्तमान प्रश्नों से कोई लेना-देना नहीं है। **फारूक** (सुप्रा) के मामले में, इस न्यायालय ने वादपत्र को पूरी तरह से पढ़ने के बाद पाया कि यह मुकदमा साझेदारी विलेख के खंड 25(डी) पर आधारित था जिसमें विशेष रूप से कहा गया था कि फर्म का कोई भी भागीदार सहमति के बिना काम नहीं करेगा। अन्य साझेदारों को फर्म से संबंधित अचल संपत्ति को हस्तांतरित करने का अधिकार होने का लेखन। उस मामले में, एक अपंजीकृत फर्म के दो साझेदारों ने सभी साझेदारों की सहमति के बिना प्रतिवादी साझेदार द्वारा की गई बिक्री को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर किया था। इस न्यायालय ने पाया कि मुकदमा केवल उक्त साझेदारी विलेख की शर्तों से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने के लिए था और इसलिए, यह 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) के प्रतिबंध को आकर्षित करता है। उक्त निर्णय, एक पूरी तरह से अलग तथ्य की स्थिति के लिए और भिन्न दावे का वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है।

विषय वाद में प्रासंगिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग

19. वर्तमान मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, इसमें एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि विचाराधीन लेनदेन, यानी, वादी फर्म द्वारा प्रतिवादियों को अपने हिस्से की बिक्री, के व्यवसाय से उत्पन्न नहीं हुई है वादी फर्म. यह तथ्यात्मक पहलू मूल वाद कथनों से स्पष्ट है और ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ उच्च न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों से भी मजबूत होता है। हालाँकि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष का समर्थन किया कि विचाराधीन लेनदेन वादी फर्म के व्यवसाय से उत्पन्न नहीं हुआ था, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इस महत्वपूर्ण निष्कर्ष के निहितार्थ ने उच्च न्यायालय का अपेक्षित ध्यान आकर्षित नहीं किया है। **पुरूषोतम** (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का हवाला उच्च न्यायालय के समक्ष दिया गया था, लेकिन आक्षेपित निर्णय के पैराग्राफ 33 में इसका उल्लेख करते समय, उच्च न्यायालय ने संभवतः केवल संपादक के हेडनोट को देखा और किसी भी मामले में, अनुपात से चूक गए और उसमें सिद्धांत, जैसा कि पिछले निर्णयों के संदर्भ में दोहराया गया है। ऐसा लगता है कि **हल्दीराम भुजियावाला** (सुप्रा) में फैसला नहीं हुआ है

उच्च न्यायालय के विचाराधीन हालांकि इस निर्णय ने ट्रायल कोर्ट के आदेश का आधार बनाया।

19.1. जैसा कि देखा गया है, वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण और प्रमुख कारक यह है कि विचाराधीन बिक्री लेनदेन अपीलकर्ता फर्म के व्यवसाय से उत्पन्न नहीं हो रहा है। समान रूप से महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विषय मुकदमा धोखाधड़ी और गलत बयानी के आधार पर किसी दस्तावेज़ से बचने के अधिकार के साथ-साथ घोषणा और निषेधाज्ञा मांगने के वैधानिक अधिकारों को लागू करने के लिए है। गौरतलब है कि प्रतिवादी फर्म "अक्षरे डेवलपर्स" (प्रतिवादी क्र० 1) की संरचना पर वादी-अपीलकर्ता द्वारा स्वयं सवाल उठाया गया है, जबकि आरोप लगाया गया है कि 22.04.2014 को, इस फर्म का गठन चार भागीदारों के साथ किया गया था, लेकिन बाद में, प्रतिवादी क्र० 2 और 3 (यहाँ उत्तरवादी क्र० 2 और 3) ने अन्य दो को छोड़कर स्वयं को साझेदार के रूप में रखते हुए उसी नाम से एक और फर्म का गठन किया।

19.2. हम किसी भी पक्ष के मामले की योग्यता पर टिप्पणी नहीं कर रहे हैं, लेकिन वादी के फ्रेम और सामग्री और उसमें प्रार्थनाओं को देखने से इतना स्पष्ट है कि वर्तमान मामले को ऐसा मुकदमा नहीं कहा जा सकता है। अपंजीकृत फर्म जो 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) के प्रतिबंध को आकर्षित करेगी।

20. इसे अलग ढंग से कहें तो, प्रासंगिक सिद्धांत, जब वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होते हैं, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि विचाराधीन लेनदेन वादी फर्म द्वारा अपने व्यवसाय के कोर्स के दौरान दर्ज किया गया लेनदेन नहीं था (यानी, भवन निर्माण का); और यह मुकदमे की संपत्ति में फर्म के हिस्से की बिक्री का एक स्वतंत्र लेनदेन था, जो कि प्रतिवादियों को था। उक्त बिक्री लेनदेन के संबंध में धारा 69(2) की रोक लागू नहीं होती है। इसके अलावा, विषय वाद को किसी अनुबंध से उत्पन्न अधिकार के प्रवर्तन के लिए नहीं कहा जा सकता है; बल्कि विषय सूट स्पष्ट रूप से वह है जहां वादी धोखाधड़ी और गलत बयानी के आरोपों के साथ-साथ विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 के प्रावधानों के संदर्भ में निषेधाज्ञा और घोषणा के वैधानिक अधिकारों के साथ-साथ स्थानांतरण के लिए सामान्य कानून उपचार चाहता है। संपत्ति अधिनियम, 1882 (बिक्री प्रतिफल की कमी का आरोप लगाते हुए)। इसलिए, 1932 के अधिनियम की धारा 69(2) की रोक वर्तमान पर लागू नहीं होता है मामला।

निष्कर्ष

21. उपरोक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि, इस उद्देश्य के लिए 1932 के अधिनियम की धारा 69 के तहत, वर्तमान मामला शासित होता है **रैप्टाकोस ब्रेट एंड कंपनी लिमिटेड** (सुप्रा) में निर्धारित सिद्धांत आगे बताए गए हैं

हल्दीराम भुजियावाला (सुप्रा) में उजागर। अत: अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमे पर धारा 69(2) की रोक लागू नहीं होती है। ट्रायल कोर्ट ने मामले के तथ्यों की सही सराहना की और उत्तरवादी द्वारा दायर निराधार आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया था। उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश, लागू कानूनी सिद्धांतों के अनुरूप नहीं होने के कारण, रद्द किया जाना आवश्यक है।

22. तद्नुसार, यह अपील स्वीकार की जाती है; 2017 के सिविल रिवीजन एप्लीकेशन क्र० 241 में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 15.02.2018 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया गया है; और 2015 के विशेष सिविल सूट संख्या 333 में 9वें अतिरिक्त वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, वडोदरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.04.2017 को बहाल किया जाता है। ट्रायल कोर्ट से अब यह अपेक्षा की जाएगी कि वह कानून के अनुसार मुकदमे की सुनवाई आगे बढ़ाए।

दिव्या पांडे अपील की अनुमति
(रुपांशी विरांग एलसीआरए द्वारा सहायता प्राप्त)

सुश्री संघपुष्पा भतपहरी)
प्रथम अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश,
कोरबा, जिला-कोरबा (छ.ग.)